प्रारम्भिक विद्यालयी शिक्षा में बहुभाषिकता की आवश्यकता विशेषकर जनजातीय बच्चों की शिक्षा के संदर्भ में एक शिक्षक से अपेक्षा

*एस. सी. चौहान**

अनुसूचित जनजातीय बच्चों को उनकी भाषा में शिक्षा प्रदान करने की शिक्षा व्यवस्था आखिर क्यों की जाए? इस सवाल के उत्तर में यह कह सकते हैं, क्योंकि भारत एक बहुधर्मी, बहु-सांस्कृतिक एवं बहु-भाषाई लोगों का देश है। यहाँ शिक्षा प्राप्त करना प्रत्येक 6 से 14 वर्ष आयु वर्ग के बच्चे का एक मौलिक अधिकार है (संविधान के 86 वे संशोधन के अनुसार)। यदि सभी बच्चों को शिक्षित करना है, तो प्रत्येक की मातृभाषा में शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था करनी होगी, जिसके लिए बहुभाषाई शिक्षा व्यवस्था विद्यालयों में उपलब्ध करानी होगी। भारतीय संविधान की धारा 351 (ए) के तहत प्रत्येक बच्चे को उसकी मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार मिला हुआ है। विद्यालयों में बहुभाषाई शिक्षण के क्रियान्वयन के लिए भारत सरकार द्वारा समय-समय पर गठित विभिन्न आयोगों की अनुसंशाओं को भी प्रकाश में लाया गया है। राष्ट्रीय स्तर पर भाषाई नीति के लिए त्रिभाषा सूत्र भी लागू किया गया है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा निर्मित राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखाओं में भी बहुभाषाई शिक्षा व्यवस्था के मुद्दे पर बल दिया गया है। अनुसूचित जनजाति के बच्चों की शिक्षा की समस्याओं में से एक बड़ी समस्या है उनकी 'विद्यालयी भाषा और उनकी गृहभाषा में अंतर' जो इन बच्चों की न्यून शैक्षिक उपलब्धि के लिए भी उत्तरदायी है। इसका समाधान उनकी मातृभाषा में उन्हें शिक्षा प्रदान कर निकाला जा सकता है। एक शिक्षक अपने शिक्षण के समय यह सुनिश्चित करें, कि उसकी कक्षा में कौन-कौन-सी भाषा जानने वाले बच्चे बैठे हैं। वह उन्हें उनके इस मौलिक अधिकार को प्रदान करने का प्रयास करें, इसके लिए उसे कक्षा शिक्षण को

प्रासंगिक बनाना पड़ेगा। शिक्षा को प्रासंगिक बनाने के लिए शिक्षक को बच्चों के मानसिक स्तर पर जा कर शिक्षण करना होगा, स्थानीय परिवेश एवं स्थानीय भाषा का इस्तेमाल, स्थानीय पेड़-पौधों, नदी, पहाड़ इत्यादि से उदाहरण देकर पाठ्यवस्तु को जोड़ना होगा और बच्चों की मौलिक चिंतन एव सजृनात्मकता को विकसित करना होगा, तभी बच्चे परस्पर सामाजिक, सांस्कृतिक एवं भाषाई विविधता को सराहेंगे, समझेंगे, सीखेंगे एवं ज्ञान के स्रोत के रूप में इस्तेमाल करेंगे। अनेक जनजातीय, अल्पसंख्यक भाषाएँ/बोलियाँ जो आज विलुप्तीकरण कगार पर खड़ी हैं उन्हें भी बचाया जा सकेंगा। विद्यालय में पढ़ाई के लिए उपयुक्त वातावरण निर्मित होगा और सभी बच्चे आनंदपूर्वक कक्षा शिक्षण में रुचि लेंगे। इसी प्रकार का शिक्षण कार्य एक शिक्षक से अपेक्षित है।

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की एक सबसे बड़ी शैक्षिक चुनौती यही है कि अनुसूचित जनजातीय क्षेत्रों के विद्यालयों में नामांकित (दाखिल) बच्चों को कम-से-कम प्रारंभिक शिक्षा पूर्ण करने तक रोके रखना। यह गुणात्मक शिक्षा प्रदान करके ही किया जा सकता है। इसके लिए जहाँ एक तरफ विद्यालयी व्यवस्था को चाक चौबंद करने की आवश्यकता है, वहीं जनजातीय परिवारों के प्रथम पीढ़ी शिक्षार्थियों की विभिन्न शैक्षिक समस्याओं में से एक अहम समस्या 'विद्यालयी भाषा एवं गृह भाषा में अंतर' पर गंभीरता से विचार करना होगा या दूसरे शब्दों में इसी बात को यों कहें, कि कक्षाओं में पठन-पाठन की व्यवस्था जनजातीय क्षेत्रों में बोली जा रही भाषा या स्थानीय भाषा में करनी होगी, जिससे कम-से-कम प्राथमिक स्तर पर प्रथम पीढ़ी के शिक्षार्थियों को शिक्षा ग्रहण करने में भाषाई कठिनाईयों का समाधान निकाला जा सकेगा। परिणामस्वरूप जनजातीय बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि संतोषजनक होगी और वह सफलतापूर्वक प्रारंभिक शिक्षा पूर्ण कर सकेंगे। यहाँ इसका अभिप्राय यह बिल्कुल नहीं, कि अनुसूचित जनजाति के बच्चों को प्रारम्भिक स्तर पर अन्य भाषाओं (अंग्रेजी एवं हिंदी) एवं क्षेत्रीय भाषाओं को सिखाने या सीखने की आवश्यकता है ही नहीं। एक ओर शिक्षाविद्ों का यह विचार सत्यता के अत्यंत निकट है, कि प्रत्येक बच्चे में बाल्यावस्था में भाषा सीखने की असीम क्षमता होती है, उस समय बच्चे को किसी भी भाषा के माध्यम से ज्ञान प्रदान किया जा सकता है। वे तीव्रता से सीखते हैं, जब कि दूसरी ओर वयस्कों को किसी अन्य भाषा को सीखने में अधिक समय की आवश्यकता होती है और वे कठिनाई भी महसूस करते है। अनेको शोध इस बात को प्रमाणित करते हैं, कि विद्यालयों में पढ़ाई का माध्यम बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करता है। मातृभाषा के माध्यम से शिक्षण करने से

**वरिष्ठ प्रवक्ता,* विशेष आवश्यकता समूह शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

कक्षा-कक्ष की गतिविधियों में बच्चों की सक्रिय भागीदारी होती है। शिक्षण रुचिकर होता है तथा पढ़ाई गई विषयवस्तु बच्चों की समझ में जल्दी आती है। हस्ताँतरण क्षति (ट्रांजेक्शनल लॉस) कम होने से समय एवं उर्जा की बचत भी की जा सकती है फलस्वरूप बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि अच्छी होती है। सभी को शिक्षित करने की दिशा में इस सदी के प्रारंभिक वर्षो में ही एक देशव्यापी 'सर्व शिक्षा अभियान' प्रारंभ किया गया। इसमें सब बच्चों की भाषा में शिक्षा प्रदान करने पर बल दिया गया। देश के सभी राज्यों के सभी जनपदों के सभी विकास खण्डों तथा प्रत्येक ग्राम/बस्ती तक शिक्षा का पहुँचना तभी संभव होगा, जब शिक्षा सभी की भाषा/बोली में उपलब्ध कराई जाएगी।

बहुभाषिकता के यर्थाथ को स्वीकार करते हुए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा 2005 में कहा गया है, कि

> *''भाषिक और धार्मिक अल्पसंख्यक के बच्चों के लिए संविधान प्रदत्त दृष्टिकोण से विशेष प्रबंध किए जाने और ध्यान रखने की आवश्यकता है। आदिवासियों की भाषा के संबंध में कुछ राज्यों ने समझदारी से व्यवस्था कर रखी है, कि बच्चों की आरंभिक कक्षाओं में शिक्षा उनकी अपनी घर की भाषा में ही हो।''*

इस तरह प्रत्येक विद्यार्थी को सीखने में सहूलियत होती है तथा अधिगम की गुणवत्ता में भी बेहतरी होती है।

संविधान निर्माताओं ने भाषा के महत्व एवं भारत में भाषाई विविधता को ध्यान में रखते हुए ही संविधान की अनुसूची 8 में प्रारंभ में लगभग 14 भाषाओं को सरकारी काम-काज की भाषाओं के रूप में अधिकृत किया। बाद में संविधान संशोधन कर कई अन्य क्षेत्रीय भाषाओं को सम्मिलित किया गया। भारतीय भाषाई सर्वेक्षण 1927 के अनुसार आठ दशक पहले देश में 179 भाषाएँ तथा 544 बोलियाँ बोली जाती थीं, जिसमें मद्रास, बर्मा, हैदराबाद एवं मैसूर राज्यों में बोली जा रही भाषाएँ सम्मिलित नहीं थी (भारत सरकार, 1927, पृ. 17-18)। केंद्र द्वारा हिंदी को कार्यालयों की भाषा तथा अन्य सभी भाषाओं को क्षेत्रीय भाषाओं के रूप में जाना गया। इनमें कुछ राज्यों ने अपनी क्षेत्रीय भाषा को राज्य की कार्यालयी भाषा के रूप में माना तथा क्षेत्रीय भाषा के आधार पर कुछ नए राज्य भी बनें। 1971 की जनगणना के आधार पर देश में कुल 114 भाषाएँ तथा 216 मातृभाषाओं की पहचान की गई। इस समय जिन भाषाओं को बोलने वालों की संख्या 10,000 थी, उन्हें अल्पसंख्यक भाषाएँ माना गया। देश में जितनी भी गैर-अनुसूचीबद्ध भाषाएँ हैं, वे अनुसूचीबद्ध भाषाओं की सँख्या से चार गुनी से अधिक हैं, फिर भी इनके बोलने वाले लोगों की सँख्या देश की कुल आबादी का लगभग 4% ही है, इसलिए इन सभी भाषाओं को अल्पसंख्यक भाषा के रूप में ही जाना जाता हैं। वर्ष 2001 तक देश में कुल 122 भारतीय भाषाओं की पहचान की गई है, जिसमें 22 भाषाओं को अनुसूचीबद्ध किया जा चुका है। इतना ही नहीं लगभग 100 और ऐसी जीवंत भारतीय भाषाओं की पहचान की गई है, जिन्हें आठवीं अनुसूची में नहीं जोड़ा गया है। इन्हें गैर-

अनुसूची भाषाओं के रूप में रखा गया। अनुसूचीबद्ध भाषाओं को बहुसंख्यक (प्रधान भाषा) कह सकते हैं, लेकिन सभी भाषाएँ बहुसंख्यक या वृहत क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषाएँ नहीं हैं। नि:संदेह कुछ एक भाषाएँ वृहत क्षेत्र में बहुसँख्यक लोगों द्वारा बोली जाती हैं। कुछ एक अल्पसँख्यक भाषाएँ बहुत ही सीमित दायरे में कम लोगों द्वारा ही बोली जाती हैं। देश में जब भी हम अल्पसँख्यक लोगों की बात करते हैं, तो हमारा ध्यान केवल धार्मिक आधार पर सँख्या में कम लोग जैसे– मुसलमान, बुद्ध, सिक्ख, ईसाई, जैन इत्यादि की ओर ही जाता है। यहाँ यह बात भी विचारणीय है, कि भाषा किसी जाति या संप्रदाय की नहीं होती। वह तो उस क्षेत्र में रहने वाले लोगों की होती हैं, चाहे वह किसी भी धर्म या संप्रदाय के हों, वह तो सभी की जुबान होती है। भाषा की पहचान स्थान विशेष से भी की जाती है जैसे : - मैथिली, बृज, अवधी इत्यादि। कुछ विद्वान लोगों की जुबान को भाषा न मानकर बोलियों की श्रेणी में रखते हैं। शब्दकोश वंश, कबिलों में बोली जाने वाली अल्पसंख्यक भाषा का विभाजन केवल इस आधार पर करते हैं- लिपिबद्ध भाषाएँ एवं गैर लिपिबद्ध भाषाएँ। लोगों द्वारा बोली जाने वाली गैर- लिपिबद्व भाषाओं को भी शब्दकोशों में भाषा ही कहा जाता है। भले ही उन्हें बोलने वालों की सँख्या कम हो। जैसे संथाली, गौड़ी, हलवी, मुंडारी, कुरुख, भतरी, अगमी इत्यादि जनजातीय भाषाएँ लिपिबद्ध हैं। उत्तर पूर्वी राज्यों की जनजातीय भाषाएँ जैसे– गारो, खासी, जयंतिया इत्यादि की लिपि नहीं है। देश के विभिन्न भागों में ऐसी कई गैर–लिपिबद्ध भाषाएँ लोगों द्वारा बोली जाती हैं।

संवैधानिक प्रावधान – भारतीय संविधान की धारा 351(ए) प्रत्येक बच्चे को मातृभाषा माध्यम में शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्रदान करती है। सभी को समान रूप से विद्यालयों में प्रवेश मिले तथा नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा 6-14 वर्ष आयु वर्ग के सभी बच्चों को प्राप्त हो, इसके लिए संविधान अनुच्छेद 345 राज्यों को स्वतंत्रता प्रदान करता है कि वह एक या अधिक क्षेत्रीय भाषाएँ या हिंदी को अपने–अपने राज्य की सरकारी कामकाज या कार्यालयी भाषा के रूप में (इस्तेमाल) प्रयोग/उपयोग कर सकता है। सामान्यत: भाषाई अधिकार केवल कार्यालयी भाषा या उनके उपयोग के अधिकार के तौर पर देखा जाता है, जबकि मातृभाषा को विद्यालयों में शिक्षण के माध्यम के रूप में उपयोग करने का सांवैधानिक अधिकार है। इसका अंतर्राष्ट्रीय समझौता 'हेमवर्ग डिक्लैरेशन ऑन अडल्ट लर्निंग यूनेस्को (1997)' में हुआ था जिसने भाषाई अल्पसंख्यकों तथा प्राचीन (आदि) भाषा–भाषी समूहों को भी भाषाई अधिकार दिया गया है। इसमें मुख्यत: निम्नलिखित बातों को सम्मिलित किया गया है–

- छोटे बच्चों की शिक्षा आवश्यकता अनुसार उनकी मातृभाषा में हों।
- राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था में वृहत समुदायों की भाषा में शिक्षण सामग्री उपलब्ध कराई जाए।
- अंतसाँस्कृतिक शिक्षा भाषाई अल्पसंख्यकों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का वर्धन करें।
- अंर्तराष्ट्रीय भाषाओं में शिक्षण की सुविधाएँ भी उपलब्ध कराई जाए।
- प्रवासी मजदूरों तथा उनके परिवारों के अन्य सदस्यों को शिक्षा का अधिकार इस समझौते

के अंर्तगत दिया गया है, जिसके अंर्तगत शिक्षण-अधिगम में बच्चे की मातृभाषा में शिक्षा सुविधा उपलब्ध कराई जाए। इस प्रकार के प्रयास से बच्चों को अपनी भाषा एवं संस्कृति में कक्षा शिक्षण में समान अवसर प्राप्त होगें।

मानव अधिकारों की सार्वजनिक घोषणा (1948) के आधारभूत सिद्धांतों में भाषाई भेदभाव के किसी भी रूप का विरोध किया गया है। इसके अनुच्छेद 2 के अंतर्गत प्रत्येक नागरिक को स्वतंत्रता के अधिकार की घोषणा की गई है। यह बिना किसी भेदभाव के सभी को समान रूप से प्राप्त है। चाहे यह भाषाई स्वतंत्रता ही क्यों न हो? संविधान की मूल भावना के अनुसार स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् से ही शिक्षा के विकास को ही मूल मंत्र माना गया है। केंद्र एवं राज्य सरकारें निरंतर प्रभावी नीतियाँ कार्यक्रम एवं कार्य योजनाएँ बनाती रही हैं जिनकी शत-प्रतिशत सफलता एवं क्रियान्वयन पर स्वयं सरकारें प्रश्न चिन्ह लगाती रही हैं। इनके प्रमाण समय-समय पर प्रकाशित सरकारी प्रतिवेदनों में मिलते हैं, जहाँ लगभग सभी राज्य सरकारें शैक्षिक प्रगति पर अपना असंतोष जताती रही हैं, विषेशकर अनुसूचित जनजातीय बच्चों के संदर्भ में, क्योंकि आज भी यही वर्ग साक्षरता की दृष्टि से सबसे अधिक हाशिएँ पर है अर्थात् निम्नतम साक्षरता की दर एवं गुणात्मक शिक्षा दोनों में ही तुलनात्मक दृष्टि से सबसे पीछे ही है। इसके लिए मूल कारणों में से शायद एक प्रमुख कारण यही है, कि विद्यालयों में उन्हें उनकी मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा उपलब्ध नहीं कराई जा रही है।

जनसँख्या एवं विद्यालयों की उपलब्धता

वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल आबादी 102.9 करोड़ थी जिसमें ग्रामीण क्षेत्र में 74.2 करोड़ तथा नगरीय क्षेत्र में 28.6 करोड़ लोग निवास करते हैं। कुल जनसँख्या का लगभग 72.18% ग्रामीण परिवेश में है। इसमें 51.39% पुरुष तथा 48.61% स्त्रियाँ है। अनुसूचित जाति की जनसँख्या लगभग 16.66 करोड़ तथा अनुसूचित जनजाति की जनसँख्या लगभग 8.43 करोड़ हैं। इसमें सबसे अधिक लोग ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में 51.58% पुरुष तथा 48.42% अनुसूचित जाति महिलाएँ जो लगभग 13.30 करोड़ है। 50.49% पुरुष एवं 49.51% अनुसूचित जनजाति महिलाएँ जो लगभग 7.73 करोड़ सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में तथा पर्वतीय या घने जंगलों में निवास करते हैं। जहाँ कई बस्तियों में आज भी विद्यालय नहीं पहुँच पाए हैं वहाँ साक्षरता दर अत्यंत न्यून है। वैसे भी देश की साक्षरता दर तालिका में कुल साक्षरता दर 65.3% की तुलना में जनजातीय साक्षरता दर केवल 47% ही है यदि इसमें भी महिला साक्षरता की बात की जाए, तो स्थिति और भी स्पष्ट हो जाएगी। देश में कुल महिला साक्षरता दर 54% है जिसकी तुलना में जनजातीय महिला साक्षरता दर मात्र 34.8% ही हैं।

विद्यालयों की उपलब्धता के राष्ट्रीय मापदण्ड् के आधार पर जनजातीय क्षेत्रों में उपलब्ध विद्यालयों की स्थिति का तुलनात्मक विवरण राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (2002) के सर्वेक्षण से और भी स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। सातवें अखिल भारतीय विद्यालयी शिक्षा सर्वेक्षण (रा.शै.अ.प्र.प.) के अनुसार देश में

कुल गाँव 6,36,715 हैं। जिसमें 5,86,986 आबाद गाँव हैं। इस सर्वेक्षण के अनुसार 6,374 विकास खण्ड तथा 5,291 तहसील (तालुका) हैं, इनमें शिक्षा के प्रारंभिक स्तर के विद्यालयों की उपलब्धता निम्न तालिकाओं में दर्शाई गई हैं।

प्राथमिक विद्यालययुक्त बस्तियाँ एवं जनसँख्या

	बस्तियाँ % में		जनसँख्या % में	
	बस्ती के भीतर	1 कि.मी. तक	बस्ती के भीतर	1 कि.मी. तक
सभी	51.55	85.63	78.17	94.17
अनुसूचित जाति	42.50	86.07	68.05	92.84
अनुसूचित जनजाति	47.13	79.27	69.84	89.01

उच्च प्राथमिक विद्यालययुक्त बस्तियाँ एवं जनसँख्या

	बस्तियाँ % में		जनसँख्या % में	
	बस्ती के भीतर	3 कि.मी. तक	बस्ती के भीतर	3 कि.मी. तक
सभी	16.88	80.91	41.77	88.72
अनुसूचित जाति	11.60	81.83	24.21	86.27
अनुसूचित जनजाति	10.76	67.21	26.76	76.58

प्राथमिक स्तर से लेकर माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा व्यवस्था पर दृष्टिपात करने पर निष्कर्ष यही निकलता है, कि तुलनात्मक रूप में अनुसूचित जनजातियाँ सबसे कम सुविधासंपन्न हैं अर्थात देश में अभी भी अनुसूचित जनजातियाँ की अधिकाँश आबादी शिक्षा के विकास में सबसे पीछे है इसका अर्थ यह बिल्कुल नहीं कि विगत 6 दशकों में इनकी स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ है, निःसंदेह हुआ है, परंतु स्थिति बहुत सम्मानजनक नहीं है, जहाँ समानता के अधिकार की संवैधानिक वचनबद्धता हो, वहाँ अनुसूचित जनजातियों की शिक्षा की ऐसी स्थिति एवं गुणवत्ता देश के लिए संतोष का विषय हो ही नहीं सकता।

मातृभाषा एवं जनजातीय भाषाएँ

ग्रिक्सन ने भारतीय भाषाओं के सर्वेक्षण के आधार पर भाषाओं के वर्गीकरण का आधार मातृभाषा के रूप में बोली जाने वाली भाषा को ही माना है। देश में प्रत्येक दशक में किए जाने वाले सर्वेक्षणों में मातृभाषाओं के विषय में देशवासियों द्वारा भिन्न-भिन्न सँख्या बताई गई है। यहाँ लोग अपनी मातृभाषा को अपने धर्म, क्षेत्र अथवा स्थान के अनुसार अलग-अलग बताते हैं। बच्चे की मातृभाषा बाल्यावस्था में बोली जाने वाली भाषा, परिवार, पड़ोस तथा क्षेत्र इत्यादि में बोली जाने वाली कोई एक भाषा होगी। यह कोई जरूरी नहीं, कि इस पर धार्मिक, राजनैतिक एवं सामाजिक संरचना का प्रभाव पड़ता ही हो। डी.पी. पटनायक के अनुसार मातृभाषा वह है ''जिसमें सर्वप्रथम अवधारणाओं की उत्पति होती है और उससे विचारों की अभिव्यक्ति होती है। यह घर के चारों ओर के माहौल में बोली और जानी जाती हैं।''

भारत में अधिकांशत: जनजातीय भाषाएँ गैर अनुसूचीबद्ध भाषाओं के अंर्तगत आती है, जिसमें से कुछ ही भाषाएँ लिपिबद्ध हैं। अनेकों जनजातीय समाज की भाषाएँ लिपिबद्ध नहीं है अर्थात् उनको केवल बोला ही जाता है। इन्हें परंपरागत बोलचाल की (सांकेतिक) भाषाओं के रूप में जाना जाता है जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को व्यवहारिक प्रयोग के माध्यम से ही हस्तांतरित की जाती हैं। वास्तव में इन भाषाओं (बोलियों) की कोई

लिखित परंपरा है ही नहीं, केवल मौखिक रूप से समूह में परस्पर लोग बोलते हुए ही देखे जाते हैं। कुछ जनजातीय समूह जब आपस में बातचीत करते हैं, तभी उनका प्रयोग होता है। अधिकतर जनजातियाँ अपनी भाषा के अलावा अन्य स्थानीय भाषा/संपर्क भाषा को भी समझतीं और बोलतीं हैं जैसे – छत्तीसगढ़ के गौड़ (गौड़ी), हलवा (हलवी), भतरा (भतरी), दोलरा (दोलरी)। छत्तीसगढ़ के जनजातीय भाषा-भाषीय अपनी मातृभाषा के अलावा छत्तीसगढ़ी भाषा को भी अच्छे ढंग से समझते एवं बोलते हैं। झारखण्ड में बसे मुंडा (मुंडारी), संथाल (संथाली), उराव (कुरूख) भाषा के अलावा साहदरी (संपर्क) भाषा को समझते व बोलते हैं। साहदरी भाषा को पूर्वोत्तर राज्यों में भी संपर्क भाषा के रूप में जनजातियाँ बोलतीं और समझतीं हैं। अरुणाचल प्रदेश में बसी जनजातियाँ अपनी स्थानीय भाषा गारो के अलावा साहदरी का भी प्रयोग करतीं हैं। प्रारंभिक कक्षाओं में पढ़ रहे जनजातीय बच्चों की शिक्षा में विविधता जहाँ एक ओर कई प्रकार के अवसर प्रदान करती हैं, वहीं दूसरी ओर कक्षा शिक्षण में जटिल चुनौती भी प्रस्तुत करती है, विशेषकर तब, जबकि गैर-शिक्षक अनुसूचित जनजातियों के शिक्षक विद्यालयों में शिक्षण कार्य कर रहे हों, जिन्हें न तो स्थानीय भाषा का ही ज्ञान हो और न ही अनुसूचित जनजाति संस्कृति के विषय में जानकारी हो।

मातृभाषा में शिक्षा के अधिकार पर विभिन्न आयोगों का विचार एवं भाषाई नीतियाँ

भारत सरकार के माध्यमिक शिक्षा आयोग (1956) ने स्पष्ट शब्दों में उल्लिखित किया है कि मातृभाषा के माध्यम से सीखना अधिक समझ देता है एवं विद्यार्थी अपने विचारों की अभिव्यक्ति प्रभावी ढंग से कर सकता है, जिससे उसका संपूर्ण व्यक्तित्व सामने आता है। शिक्षा आयोग (कोठारी कमीशन 1964-66) की वे सिफारिशें आज भी विचारणीय है, जिसमें कहा गया कि

> *"जिस स्तर पर हिंदी या अँग्रेज़ी द्वितीय भाषा के रूप में अनिवार्य भाषा के तौर पर लागू करके जितनी अवधि के लिए उसका अध्यापन तय किया जाता है। वह स्थानी प्रेरणा और आवश्यकता पर निर्भर करेगा और इसके लिए इसे प्रत्येक राज्य के विवेक पर छोड़ देना चाहिए।" {8.33 (5)}*

भाषाई नीति (त्रिभाषा फार्मूला)

इसका मूल उद्देश्य राष्ट्रीय एकता, अंतर्राज्यीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सहज संवाद एवं संचार स्थापित करना है। इसके लिए केंद्र सरकार और राज्य/केंद्र शासित राज्यों की सरकारों द्वारा विद्यालयों में त्रिभाषा सूत्र का पालन सुनिश्चित करना है। भाषाई संदर्भ में यदि राज्य सरकार चाहे, तो इसमें मामूली संशोधन भी कर सकती है जैसे उत्तर पूर्वी राज्यों को उनकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर अपने विवेक के अनुसार इसकी मूल भावनाओं को समझते हुए लागू करने की आजादी है। प्राथमिक विद्यालयों के प्रथम वर्षों में शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा का प्रयोग बच्चों को सुनने, बोलने, पढ़ने, लिखने और सोचने इत्यादि में समझ विकसित करने में मदद करता है, जिससे बच्चे सुवाच्य, शुद्ध-उच्चारण एवं सही वर्तनी सीखने तथा लेखन की गलतियों से

बच सकेंगें। साथ-ही-साथ सृजनात्मकता, आत्म अभिव्यक्ति में विश्वास एवं मौलिक चिंतन कर सकेंगे। इसके पश्चात् विद्यालयी शिक्षा की कक्षाओं में सहज रूप से क्षेत्रीय भाषाओं और अन्य दूसरी भाषाओं के माध्यम से ज्ञान अर्जित कर सकने में भी समर्थ हो सकेंगे। आगे चलकर उच्च स्तर की कक्षाओं में राष्ट्रीय एवं अंर्तराष्ट्रीय भाषाओं को भी लागू किया जा सकता है।

बहुभाषाई शिक्षण की आवश्यकता आखिर क्यों?

मातृभाषा शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह बच्चे में सकारात्मक स्वप्रतिबिंब विकसित करने में सहायक होती है। जो भाषाई अल्पसँख्यक समूह भाषा एवं संस्कृति को दूसरे समूहों/बड़े समूहों की भाषा-संस्कृति में विलीन करते हैं, उनकी भाषा समाप्त हो जाती है। यूनेस्को ने पेरिस में 1951 संगोष्ठी का अहम मुद्दा दिया था- बच्चों को मातृभाषा में शिक्षण प्रदान करना। सभी विशेषज्ञों ने बड़े जोरदार शब्दों में मातृभाषा में शिक्षा प्रदान करने के पक्ष में विचार व्यक्त किए। बच्चा शैक्षिक दृष्टि से अपरिचित भाषा की तुलना में मातृभाषा में जल्दी सीखता है। शिक्षा प्राप्ति का सही तरीका कक्षा-शिक्षण प्रक्रिया में मातृभाषा का अधिकतम उपयोग ही है, जिससे शिक्षक और शिक्षार्थी के मध्य होने वाली पठन-पाठन क्षति को कम किया जा सकता है या यों कहें कि शिक्षक बच्चों को कुछ सिखाना चाहता है या सिखाता है वह पूरा का पूरा बच्चों की समझ में आ जाता है। यदि ऐसा संभव हो सकें तभी सफल शिक्षण होगा।

भाषा न केवल व्यक्तियों की परस्पर बातचीत का एक उपकरण है, बल्कि यह एक सांस्कृतिक पहचान भी है। भाषा में सामाजिक सशक्तीकरण की मौलिक विशेषता भी छिपी होती है। भारत जैसे बहुभाषाई समाज में शांति और सौहार्द के लिए भी भिन्न भाषा-भाषी लोग एक दूसरे की भाषाओं की विविधता का सम्मान करें, विशेषकर उन लोगों की, जो रोजगार की तलाश में अपने मूल स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं और नई जगह पर वे भाषाई अल्पसँख्यक बन जाते हैं, क्योंकि उनकी भाषा बोलने वाले लोग उस स्थान पर पहले से तो होते ही नहीं या कम होते हैं। ऐसे में उस स्थान पर भाषाई बहुसँख्यक लोगों को चाहिए कि वे दूसरे भाषाई अल्पसँख्यकों की कठिनाई का अनुमान लगाएँ तथा उनके प्रति सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार करें। उनका न केवल सम्मान करें बल्कि उनकी कठिनाई दूर करने का प्रयास करें, जिससे परस्पर सम्पर्क से ज्ञान के शब्दकोश की वृद्धि तो होगी ही, साथ ही विद्यालय में सौहार्दता का वातावरण भी निर्मित होगा। भाषाई अल्पसँख्यक परिवारों के जो बच्चें विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं उन विद्यार्थियों का हक और भी प्रबल हो जाता है कि उन्हें उनका यह प्रथम अधिकार मिले जिससे वह पढ़ाई-लिखाई अपनी मातृभाषा में करें। जनजातीय बच्चों की भाषाई विभिन्नता के कारण समझने की समस्या का समाधान भी हो सकेंगा। भाषाएँ एक प्रकार से ज्ञान के शब्दकोश का भी काम करती हैं। ये वो माध्यम भी हैं जिनसे अधिकतर ज्ञान का निर्माण होता है। मनुष्य के विचार और उसकी अस्मिता

से गहरा संबंध होता है। किसी बच्चे को उसकी मातृभाषा दूर करने का प्रयास उसके व्यक्तित्व में हस्तक्षेप करने की तरह लगता है। मातृभाषा के माध्यम से ही बच्चे प्रभावी समझ, विचारों की अभिवृत्ति, व्यक्तियों और वस्तुओं तथा अपने आसपास के संसार से अपने आपको जोड़ पाने में समर्थ होते हैं।

दुर्भाग्य से अनुसूचित जनजाति क्षेत्रों में शिक्षण की स्थिति कदाचित भिन्न हैं। वहाँ शिक्षक दूसरे समुदाय क्षेत्र और भाषा-भाषीय स्थलों से आते हैं। वे बच्चों की स्थानीय भाषा से पूर्णत: अपरिचित होते हैं और बच्चे शिक्षक एवं पाठ्य पुस्तकीय भाषा या विद्यालय में उपयोग की जा रही भाषा की भिन्नता के कारण पढ़ाई गई विषयवस्तु को पूर्णत: समझ ही नहीं पाते। परिणामत: शिक्षक का कक्षा-शिक्षण में प्रयास सफल नहीं हो पाता, हस्तांतरण क्षति(ट्रांसजेक्शन लॉस) भी होती है। अधिकतर जनजातीय बच्चे संकोची स्वभाव के कारण शिक्षकों से प्रश्न नहीं पूछते। फलत: बच्चे न समझ पाते हैं, न ज्ञान की रचना कर पाते हैं और न ही उसे परीक्षा में लिख पाते हैं। अंतत: फेल हो जाते है और बार-बार फेल होने से वे विद्यालयी शिक्षा पूर्ण किए बिना ही विद्यालय छोड़ जाते हैं। जिससे बड़े पैमाने पर न केवल धन का अपव्यय होता है, बल्कि बहुत-सा शिक्षक श्रम भी बेकार जाता है।

राष्ट्रीय स्तर पर बहुभाषी शिक्षा के क्रियान्वयन हेतु प्रयास

भारत एक बहुधर्मी एवं बहुभाषाई लोगों का देश है। यहाँ की सांस्कृतिक विविधता में एकता एक बड़ी विशेषता है। लोगों की पहचान, राष्ट्रीयता और विचारों की अभिवृत्ति इत्यादि कक्षा शिक्षण की भाषा से परस्पर निकटता से जुड़े हुए हैं। भिन्न-भिन्न समाजों में बातचीत का माध्यम इस बात को दर्शाता है कि कक्षा में शिक्षण का माध्यम मातृभाषा (प्रथम भाषा) में किया जाए तो बच्चों में अधिगम (क्षमता) तीव्रता होती है। अभी हाल ही में एनसीईआरटी द्वारा विकसित राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 में भी विद्यालयी शिक्षा के प्रारंभिक वर्षों में मातृभाषा में शिक्षण पर बल दिया गया है, साथ ही मातृभाषाओं को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि

> *''इसके अंर्तगत घर की भाषाओं, बड़े कुनबे की भाषा, आस-पड़ोस की भाषा इत्यादि आ जाती है, जिन्हें बच्चे स्वाभाविक रूप से अपने घर और समाज के वातावरण से ग्रहण कर लेते हैं।''*

अधिकांश बच्चे, स्कूल आने से पूर्व ही दो-तीन भाषाओं को समझने और बोलने की क्षमता लेकर विद्यालय में प्रवेश करते हैं। वे न केवल उन भाषाओं को सही-सही बोलते हैं, बल्कि उनका उचित प्रयोग भी कर रहे होते हैं।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा-2005 में कहा गया है कि

> *''बाल अधिकार समझौता बच्चों को अभिव्यक्ति के अधिकार की गारंटी देता है ताकि वे उन मुद्दों पर खुलकर बोल पाएं जो उन्हें प्रभावित करते हैं और अभिव्यक्ति से आजादी महसूस करें। जिससे सभी बच्चों की सहभागिता स्वाभाविक रूप से बढ़ेगी। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 1988 के अनुसार ''यदि प्राथमिक विद्यालयों में द्वितीय भाषा*

पढ़ाने के लिए (संसाधन) अध्यापक उपलब्ध है, तो प्राथमिक1 स्तर पर उपयुक्त कक्षा/वर्ग से द्वितीय भाषा का अध्यापन किया जा सकता है।''

विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2000 ने भी सुझाव दिया था कि शिक्षा का माध्यम प्रत्येक बच्चे की मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा कक्षा एक से ही लागू करनी होगी। जिन बच्चों की गृहभाषा, विद्यालयी भाषा या क्षेत्रीय भाषा से भिन्न है वहाँ उपयुक्त समय पर प्राथमिक शिक्षा में क्षेत्रीय भाषा को बड़े ही सहज रूप से प्रवेश करना होगा तथा जिन राज्यों में अनेक क्षेत्रीय भाषाएँ हैं, वहाँ सरकारी या सरकारी कामकाज की भाषा को ही राज्य भाषा या प्रथम भाषा के रूप में स्वीकार कर लिया है ऐसी दशा में प्रथम भाषा के माध्यम से ही कक्षा एक से पढ़ाया जाएगा। यदि विद्यालयों में भाषाई अल्पसँख्यक बच्चे पर्याप्त मात्रा में हैं तो उन्हें उनकी मातृभाषाओं में पढ़ाने का प्रावधान करना होगा।

एक शिक्षक बहुभाषाई शिक्षा कैसे दे?

शिक्षा के विषय में अक्सर यह कहा जाता है, कि शिक्षक आवश्यक रूप से पढ़ाएं, विद्यार्थी जरूर सीखें और व्यवस्था प्राथमिकता से कार्य करें तभी शिक्षा प्रक्रिया पूर्ण होगी। यहाँ यह कहने की आवश्यकता शायद इसलिए महसूस की जा रही है, कि आज शिक्षक पूर्ण मनोयोग से शिक्षण कार्य करने में कुछ हद तक बाधित हो रहा है। यदि एक अध्यापक समय पर विद्यालय आता ही नहीं और न ही विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए आवश्यक समय देता है ऐसी दशा में विद्यार्थियों से सीखने की उम्मीद दिन में स्वप्न देखने के समान ही होगी। यदि एक शिक्षक को अपने विद्यार्थियों की भाषा के विषय में जानकारी होगी ही नहीं तो वह बच्चों के बीच संवाद भी नहीं कर पाएगा। सीमित वार्तालाप के कारण शिक्षण अधिगम बहुत ही कम होगा। शिक्षण अधिगम ठीक से हो, इसके लिए शिक्षाविद् अलग-अलग समय पर भिन्न-भिन्न मत रखते रहे हैं, जैसे– शिक्षक केंद्रित, शिक्षार्थी केंद्रित, अधिगम केंद्रित, शिक्षण-अधिगम सामग्री केंद्रित कक्षा-कक्ष, पठन-पाठन प्रक्रिया केंद्रित तथा विद्यालयी सुविधा केंद्रित इत्यादि, इन सभी में शिक्षक की भूमिका अलग-अलग परंतु महत्वपूर्ण तो रहती ही है।

अतः शिक्षक को हर संभव प्रयास करना चाहिए, कि जनजातीय क्षेत्रों में शिक्षण करते समय वहाँ की स्थानीय भाषा की समझ अवश्य ही विकसित करें और बच्चों की भाषा संबंधी समस्या का उचित समाधान खोजकर शिक्षण करें। हालाँकि यह कार्य इतना आसान नहीं है, जनजातीय क्षेत्रों में भी कक्षा बहुभाषाई विशेषताओं वाली ही होती है, फिर भी जनजातीय बहुल भाषा या स्थानीय भाषा या क्षेत्रीय भाषा की मिश्रण वाली भाषाओं का प्रचलन बोल-चाल में संपर्क भाषा के रूप में देखा जाता है। यदि उसे भी एक शिक्षक शिक्षण का माध्यम बनाए तो भी कुछ हद तक गैर-जनजातीय शिक्षक एवं जनजातीय बच्चों के मध्य भाषाई समस्या का समाधान निकाला जा सकता है। यह बात भी अपनी जगह सही ही है, कि भाषाई समस्या का प्रभाव प्राथमिक स्तर के प्रारंभिक वर्षों में ही अधिक होता है। जैसे ही बच्चे लगातार विद्यालय और शिक्षक के संपर्क में आते हैं और

शिक्षक भी उस क्षेत्र में अध्यापन कार्य करता है, तो वे एक दूसरे की बात को समझने लगते हैं, धीरे-धीरे समस्या का विकराल रूप कम होने लगता है। भाषाई कठिनाई के समाधान के लिए अध्यापक को निरंतर स्थानीय लोगों के संपर्क में रहना चाहिए, यदि संभव हो तो उसी गाँव या स्थान को निवास स्थल बनाना चाहिए, जिससे सुबह-शाम वह स्थानीय लोगों के संपर्क से वहाँ की भाषा को अत्याधिक शीघ्रता से सीख सकें। विद्यालयों में आयोजित शैक्षिक कार्यक्रमों में स्थानीय गणमान्य नागरिकों को बुलाएँ, जिससे स्कूलों में अभिभावकों की अधिक से अधिक सहभागिता होगी जो न केवल भाषाई समस्या का समाधान करेंगी, बल्कि बच्चों की अन्य समस्याएँ जैसे– कक्षा में अनुपस्थिति, परस्पर सामंजस्य की कमी, पढ़ाई-लिखाई सामग्री की कमी इत्यादि का भी हल खोजा जा सकेगा।

दुर्भाग्य से जनजातीय क्षेत्रों के विद्यालयों में माहौल कुछ ऐसा बन गया है, कि शिक्षक शिक्षण कार्य करने के बजाए अनेक अन्य कार्यों में अधिक व्यस्त रहते हैं। वह शिक्षण के अतिरिक्त कार्य जैसे– जनगणना, मतदान कराना, मतदान सूची का नवीनीकरण, पल्स पोलियो टीकाकरण इत्यादि में अपना अधिक समय लगाते हैं। यह बात सही है, कि ये क्रियाकलाप वर्ष भर तो नहीं चलते, लेकिन अब मध्याह्न भोजन विद्यालयी प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग बन गया है, जिसमें भी शिक्षक को समय देना होता है। अध्यापक- मुख्याध्यापक को राशन की दुकानों के चक्कर लगाने पड़ते हैं, जिससे वे विद्यालय समय से नहीं पहुँच पाते हैं और यदि वे विद्यालय आ भी गए तो वह पूरे समय राशन का लेखा-जोखा ही तैयार करने तथा विद्यालयों में मध्याह्न भोजन बच्चों को समय से मिले, इसी कार्य में लगे रहते हैं। यह स्थित दूर दराज़ के विद्यालयों में कदाचित और भी दयनीय है। इसलिए आवश्यक हो जाता है, कि शिक्षक नियमित रूप से समय पर विद्यालयों में पहुँचें और समय पर कक्षाओं में शिक्षण कार्य करें। तभी वह प्रथम एवं अनिवार्य कर्त्तव्य का निर्वहन कर सकेगा, जिसके लिए उसकी नियुक्ति की गई है।

जनजातीय क्षेत्रों के प्राथमिक विद्यालयों में स्थिति तब और अधिक चिंतनीय हो जाती है जब शिक्षक बच्चे की भाषा नहीं जानते और न ही बच्चे शिक्षक की भाषा को समझते हैं। क्योंकि इन विद्यालयों में कार्यरत अधिकाँश शिक्षक गैर-जनजातीय हैं और यदि कुछ जनजातीय शिक्षक हैं भी तो वे स्थानीय नहीं हैं। समस्या जस की तस बनी रहती है। परस्पर बातचीत की कमी के कारण सीखने की प्रक्रिया बाधित होती है। ऐसी परिस्थिति में शिक्षक को सबसे पहले इसे एक बड़ी समस्या के रूप में स्वीकार करना चाहिए, दूसरे उसके समाधान के प्रयास करने चाहिए। अक्सर देखा यह गया है, कि शिक्षक भाषाई समस्या का समाधान खोजने के बजाए बच्चों को ही जिम्मेदार मान लेते हैं और कहने लगते हैं, कि तुम तो सीख ही नहीं सकते। शिक्षक को इस प्रकार के दोशारोपण करने से बचना चाहिए और बच्चों को समझने का प्रयास करना चाहिए। वह यह भी जानें, कि बच्चे को मातृभाषा में पढ़ने का संवैधानिक अधिकार है और यदि वह अपनी मातृभाषा में नहीं पढ़ रहा है तो इसमें शिक्षक ही दोषी है, न कि बच्चा। शिक्षक को यह भी ज्ञात हो, कि कानूनी तौर

पर उच्चतम न्यायालय ने भी मातृभाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में मान्य किया है।

शिक्षक के लिए इस धर्म संकट से उभरने का एक मात्र रास्ता यही है, कि वह विद्यालय में बहु-भाषाई शिक्षण करें। यदि उसे स्थानीय भाषा का ज्ञान नहीं है तो वह स्थानीय लोगों की मदद लें और भाषा सीखें। यह संभव है, कि जनजातीय लोग बहुत पढ़े-लिखे नहीं होंगे लेकिन वे अपनी भाषा के ज्ञान में तो महारथ अवश्य ही हासिल किए होंगें। आजकल सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत विद्यालय विकास समितियाँ भी बनाई गई हैं। जिनमें अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति एवं महिला सदस्य अनिवार्य रूप से सम्मिलित करने का प्रावधान है। शिक्षक नवनिर्मित समिति के सदस्यों से सम्पर्क में रहकर स्थानीय समाज, समुदाय एवं भाषा के विषय में जानकारी हासिल करें। तदनुरूप शिक्षण करें। शिक्षक अनुसूचित जनजाति बच्चों को अपने बच्चों जैसा समझें और अपने शिक्षण को बच्चों के मानसिक स्तर पर लाकर करें। कक्षा शिक्षण के दौरान बहुभाषाई शिक्षण सहायक सामग्री का उपयोग करें, जैसे- चित्र के साथ उसका स्थानीय भाषा में नाम, क्षेत्रीय भाषा के अतिरिक्त हिंदी एवं अँग्रेज़ी इत्यादि में बहुभाषाओं में लिखा चार्ट एवं खेलने के कार्ड (प्ले कार्ड) इत्यादि का उपयोग करें। शिक्षण में स्थानीय त्यौहार, संस्कृति, महत्वपूर्ण लोगों, जीव जंतु एवं पर्यावरण से उदाहरण दें जिससे शिक्षण वस्तु को प्रासंगिक बना सकें। तभी बच्चे आसानी से समझ सकेंगे और सीखने-सीखाने की प्रक्रिया पूरी हो सकेंगी।

जनजातीय क्षेत्रों के विद्यालयों में अक्सर देखा यह गया, कि कई वर्षों तक अधिकारी मुख्यालयों से परिवेक्षण कार्य करने ही नहीं जाते हैं और यदि जाते भी हैं, तो केवल सड़क के किनारे के विद्यालयों या कस्बों के निकट के विद्यालयों में दौरा कर खानापूर्ति कर देते हैं। यहाँ इस बात पर कोई ध्यान ही नहीं दिया जाता, कि शिक्षक-शिक्षण किस भाषा में कर रहा है और बच्चे किस भाषा को बोलने वाले हैं। अधिकारीगण परिवेक्षण के दौरान केवल यही देखते हैं, कि शिक्षक कक्षाओं में जा रहे हैं या नहीं कि कक्षाओं में बच्चे की मातृभाषा में शिक्षण का अनुपालन हो रहा है या नहीं। आज़ादी के लगभग 60 वर्षों के बाद भी मातृभाषा और अन्य भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षण का जो सपना देखा गया था वह हकीकत से एकदम दूर है। वास्तव में यह दस्तावेजों में बन्द एक आदर्श परिकल्पना मात्र ही रह गई है। मातृभाषा में शिक्षण न केवल शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की भौतिक, सृजनात्मक एवं गति प्रदान करता है, बल्कि अनेकानेक सामाजिक साँस्कृतिक विशेषताओं, विविधिताओं का परिचय भी कराता है। बहुभाषाई शिक्षण विद्यार्थियों के परस्पर एक-दूसरे की भाषा को समझने, सहन करने, सीखने एवं ज्ञान के स्रोत का माध्यम बनती है। इसमें नि:संदेह एक शिक्षक चाहे तो देश की अनेक विलुप्त होती जनजातीय भाषाओं/बोलियों को प्राय: मृत होने से बचा सकता है और बच्चों को आनन्दपूर्वक सीखने के लिए प्रोत्साहित कर सकता है। यह कक्षा में बैठे जनजातीय बच्चों की पढ़ाई में रुचि बढ़ाने में सहायक होगा। जिससे विद्यालयों में शिक्षा के लिए उपयुक्त वातावरण निर्मित होगा। इसी प्रकार का शिक्षण कार्य एक शिक्षक से अपेक्षित है।

संदर्भ

ग्रिक्सन, डब्लू बी. इन सी. डी. दासवानी. 2001. *लेगुएज़ एज्युकेशन इन मल्टीलिंगुअल इण्डिया.* नई दिल्ली

पटनायक डी. पी. इन सी. डी. दासवानी, 2001, *लेगुएज़ एज्युकेशन इन मल्टीलिंगुअल* इण्डिया, नई दिल्ली

के.ह्वी.ह्वी. एल. नरसिम्हा राव, 2000, *मदरटंग एज्युकेशन थियोरी एण्ड प्रक्टिसिस, सेंट्रल इंसिटिट्यूट ऑफ इंडियन लेगुंएज,* मानस गंगोत्री मैसूर, इण्डिया

उदय नारायण सिंह, 2004, *लेगुंएज, सोसायटी एण्ड कल्चर, सेंट्रल इंसिटिट्यूट ऑफ इंडियन लेगुंएज*, मानस गंगोत्री मैसूर, इण्डिया.

गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया, 2001, *जनगणना रिपोर्ट*, नई दिल्ली.

———————— 1950, *इंडियन कांस्टीट्यूशन (भारतीय संविधान)*, नई दिल्ली.

———————— *माध्यमिक शिक्षा आयोग 1956*, रिपोर्ट, नई दिल्ली.

———————— *शिक्षा आयोग 1964-66, रिपोर्ट,* नई दिल्ली.

———————— *भारतीय भाषाई सर्वेक्षण 1927, रिपोर्ट,* नई दिल्ली.

———————— *यूनीवर्सल डिक्लरेशन ऑफ ह्यूमन राइट* 1948, नई दिल्ली.

यूनेस्को 1997, *हेमवर्ग डिक्लरेशन ऑफ अडलट लर्निंग रिपोर्ट*, पेरिस, फ्रांस.

———————— 2003, *एज्युकेशन इन ए मल्टीलिंगुल वर्ल्ड,* यूनेस्को एज्युकेशन पोजीशन पेपर, यूनाइटेड नेशनस् एज्युकेशनल, सांइटिफिक एण्ड कल्चरल औरगनाइजेशन, पेरिस, फ्रांस

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, 2000, *विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा,* नई दिल्ली.

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2005, *विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा,* नई दिल्ली.

———————— 2002, *सातवाँ अखिल भारतीय विद्यालयी शिक्षा सर्वेक्षण,* नई दिल्ली.